P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May-2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में चित्रित समतामूलक समाज का स्वरूप

राजमुनि
एसोसिएट प्रोफेसर,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी, भारत

सारांश

किसी समाज में परिवर्तन की शुरूआत शिक्षा एवं सोच में बदलाव से ही सम्भव है। शिक्षा से परम्परा और रूढ़ियों की दीवारें ध्वस्त होती हैं जिसने सदियों से मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न का जहर पीया हो तो वह अमृत कहाँ से वापस कर पायेगा। इसके बाद भी दलित समाज ने सदैव ऐसे समाज का सपना देखा है जिसमें प्रत्येक जाति एवं धर्म का व्यक्ति मुस्कराता रहे। महिमा ने जो चोट खाई है, उसे वह दूसरे लोगों को खाते हुए नहीं देखना चाहती है। गाँव तो दूर शहर की रग–रग में भी नफरत का जहर बसा है। उच्च शिक्षा में महिमा, राजेश एवं विजय का संघर्ष दर्शाता है कि जातिगत भेदभाव स्त्री एवं दलितों को सदैव गुलाम ही बनाये रखना चाहता है। शिक्षा से वंचित व्यक्ति ही आसानी से गुलाम बन सकता है। दलित, स्त्री या आदिवासी के नाम पर चलने वाले आन्दोलन परिवर्तन का संकेत देते हैं। समाज में एन.जी.ओ. के नाम पर केवल दिखावा होता है। चमन लाल बजाज का नारी सबलीकरण इसका उदाहरण है। चमनलाल के एन0जी0ओ0 में स्त्री एवं दलित दोनों नदारद हैं। चमनलाल सदैव इस बात का ध्यान रखते हैं कि हमारे घर की स्त्री या बाहर की। इसे जान न पाये कि हम क्या करते हैं और कैसे करते हैं– चमनलाल की सोच में परिवर्तन के दो प्रमुख आधार हैं पहला चमनलाल ने स्वयं दलित लड़की से शादी की, दूसरा चमनलाल की बहन उषा ने धीरज कुमार नाम के भंगी अध्यापक से विवाह किया। दोनों अन्तरजातीय विवाह ही इस उपन्यास की रीढ़ हैं। भले ही यह स्वेच्छा से हुये हों लेकिन प्रेम एवं परिवर्तन की हवा ने दोनों को स्थापित करने में अपूर्व सहयोग दिया है। टॉकभौरे ने संदेश दिया है कि जातिवाद के जहर को अन्तरजातीय विवाह के द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है। दलित एवं सवर्ण दोनों को आज नहीं तो कल रोटी–बेटी का सम्बन्ध बनाना ही पड़ेगा यह समतामूलक समाज की नींव है।

मुख्य शब्दः दूरदर्शिता, खानदान, खुल्लम–खुल्ला, तलाश, मैनेजमेंट, सीक्रेट, भड़भूजा, अकबका, झिंझोड़, रिसिब्ड, कूपमंडूक, दकियानूसी, चिनचिनाती, खण्डन–मण्डल, गपशप, षड्यंत्र, हवेली, प्लानिंग, रूढ़ियाँ, परम्परा, अनार्य, आर्य, दीक्षा, विजयादशमी, विजय घम्मचक्र, अप्प दीपोभव, डोम, कोर्टमैरिज, मदहोश, चिकनी–चुपड़ी, मेहमान खाना, खुद्दार, डंके की चोट, अन्तरजातीय विवाह, जातिवाद, समतामूलक समाज।

प्रस्तावना

होशंगाबाद म0प्र0 की जन्मभूमि में पैदा होने वाली लेखिका डॉ0 सुशीला टॉक भौरे आज इक्कीसवीं सदी की दुनियाँ में सामाजिक परिवर्तन की नायिका के रूप में हिन्दी साहित्य में संघर्षरत हैं। उनके जीवन का संघर्ष समाज के विविध पक्षों को उद्घाटित करता है। वे अपने इस उपन्यास में दलितों के उस पक्ष को उजागर करने का प्रयास करती हैं जिनके बिना समाज में बदलाव सम्भव नहीं। दलित समाज के लिए सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति है उच्च शिक्षा। इसके बिना दलित जीवन के प्रत्येक मोर्चे पर असफल हो जायेंगे। जो लोग शिक्षा के रथ पर सवार होते हैं वे ही सम्मान के सफर में कामयाब होते हैं। महिमा भारती समय के साथ–साथ शिक्षा के महत्व को समझ चुकी है। उसे पूरा विश्वास है कि शिक्षा प्राप्त करके ही दलित विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों को ध्वस्त करके बेहतर समाज का निर्माण कर सकते हैं – ''महिला देख रही है, समाज में दलितों की स्थिति बदल रही है। समाज की पुरानी परम्पराऐ बदल रही हैं। इन दिनों सामाजिक जाग्रति की चर्चा कुछ ज्यादा हो रही है। वर्णवादी पुराणपन्थी देश अब शिक्षा और वैज्ञानिक प्रगति से जुड़कर आधुनिक

बनता जा रहा है। लोग पुराने रीति–रिवाजों को बदलने और पुराने रूढ़ी, परम्पराओं को तोड़ने की बातें करने लगे हैं।''[1]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य है कि आधुनिक शिक्षा, समय की मांग, प्रेम की प्रगाढ़ता से ही व्यक्ति अपने विचारों में परिवर्तन करता है। जो लोग प्रेम सम्बन्धों के आगे हार जाते हैं तब वे अन्तरजातीय सम्बन्धों को दबे मन से स्वीकार करते हैं। समतामूलक समाज का निर्माण तभी सम्भव है जब प्रत्येक जाति, धर्म एवं मत के मानने वाले लोग समय के साथ कदम मिलाकर चलें। शिक्षा, स्वास्थ्य, न्याय एवं सुरक्षा पर सभी का बराबर हक होना चाहिए। मानव को सर्वोपरि रखा जाय। धार्मिक रूढ़ियों एवं परम्पराओं को तोड़े बिना समतामूलक समाज की कल्पना करना बेईमानी होगी। पूरे विश्व में मानवीय हित एवं प्रेम से बड़ी कोई चीज हो ही नहीं सकती है। इन दोनों को सहेजकर रखने से ही मानव अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। इसी से विश्व मे शान्ति का परचम लहरायेगा। नहीं तो विनाश के अलावा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

साहित्यावलोकन

डॉ0 रमेश चन्द मीणा का मानना है कि वे डॉ0 सुशीला टाकभौरे ''जातिमुक्त समाज के विजन को लेकर चलती हैं, उसे कुछ तोड़ती हैं तो कुछ जोड़ती हैं। इसी लिये तुम्हे बदला ही होगा उपन्यास में जातिवाद गढ़ को फतह करने के लिए अर्न्तजातीय जरूरी माना गया है। प्रियंका सोनकर ने कहा कि अर्न्तजातीय विवाह से ही सामाजिक विषमता खत्म होगी। 'तुम्हे बदलना ही होगा' उपन्यास पर डॉ0 अम्बेडकर की वैचारिकी का प्रभाव है।''[1] डॉ0 सुरेश मारूति राव मुले लिखते हैं कि इस उपन्यास की मूल कहानी ''बजाज और दलित समाज के सम्बन्धों पर आधारित है। जहाँ चाह होती है वहाँ राह मिलती है, इसको सिद्ध करते हुए बजाज परिवार के माध्यम से लेखिका डॉ0 सुशीला टाकभौरे ने जाति विहीन, समाज की नींव डालने का प्रयास किया हैं''[2] जहाँ तक मेरा मानना है सामाजिक परिर्वतन के लिए व्यक्ति की सोच में परिवर्तन लाजमी है। सोच में परिर्वतन का मूल कारण पश्चिमी शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति भी है जिसमें अर्न्तजातीय प्रेम विवाह की नींव रखी है। इसी से बनता है समतामूलक समाज का भव्य महल जो जन–जन के लिए उपयोगी एवं सुखदायक है।

दलितों के विषय में लोगों की धारणा बन गई है कि इनकी भाषा अश्लील व चोट करने वाली है। वे इस सच्चाई को भूल जाते हैं कि सदियों के घाव एक–दो वर्षों में नहीं भरते। जिसका बचपन अभाव, भेदभाव, आर्थिक तंगी एवं लिंगभेद का शिकार हुआ हो वह उसे आसानी से कैसे भूल सकता है। महिमा भी अपने उसी अतीत को याद करके सिहर जाती है–''महिमा जब भी अपनी वर्तमान स्थिति पर विचार करती है, तब वह अपने जीवन की पुरानी यादों में खो जाती है। कैसे बीता उसका बचपन, कैसे वह पढ़ सकी? उन दिनों को याद करते हुए वह अब भी दुखी हो जाती है।[3]

ऐसा आखिर क्यों होता है? जब शरीर पर चोट पढ़ती है तो घाव आसानी से भर जाता है। किसी के दिल और दिमाग पर पड़ने वाली अपमान की चोटें कभी नहीं मिटती हैं। यही है दलित, स्त्री एवं आदिवासी समाज की सच्चाई । इस वास्तविका से कोई भी समाज मुँह नहीं मोड़ सकता है ।

गाँव की बात दूर शहर भी जातिगत भोदभाव से अछूता नहीं बचा है। शहर के शिक्षित लोग भी भेदभाव वाली मानसिकता से ग्रसित हैं। फर्क इतना है कि गॉव के लोग खुलकर सामने से व्यवहार करते हैं लेकिन शहर के लोग सामने कुछ और पीठ पीछे कुछ व्यवहार करते हैं। महिमा शिक्षा पाने के लिए अपने चाचा सिमरन एवं चाची मीरा के साथ दिल्ली के फ्लैट में रहते हुए भी डरकर रहते हैं वे किसी से कुछ नहीं कहते हैं मीरा सवर्णों के दिखावटी व्यवहार को जानती हैं। तभी तो वह खुलकर कहती हैं–''हमें किसी से क्या लेना–देना है? आप रहे अपने घर में बड़े बनकर हम अपने घर में खुश हैं। हम अपना कमाते हैं, अपना खाते हैं किसी से कुछ माँगने नहीं जाते।''[4]

यदि किसी समुदाय या जाति की पीढ़ियों को नष्ट करना हो तो सबसे पहले उसे शिक्षा से वंचित रखो। यही काम ब्राह्मणों ने दलितों के साथ सदियों से किया। उनका यह सिलसिला आज भी बदस्तूर जारी है। 21वीं सदी का यह उपन्यास इस बात का प्रमाण देता है। महिमा बताती है कि शान्तिनिकेतन महाविद्यालय भी इसी आरक्षण विरोधी चाल को वर्षों से अपनाता आ रहा है। इसमें लेखिका बताती हैं कि किस प्रकार एस0सी0 की सीट का विज्ञापन निकलता है और किस प्रकार उसका इन्टरव्यू होता है–''महाविद्यालय के इस पद का विज्ञापन बहुत देर से दिया गया । न्यूज पेपर के कोने में छोटे अक्षरों में दिया गया कि उस पर किसी का ध्यान न जाय। अपने परिचितों को फोन से बुलाकर इन्टरव्यू ले लेते हैं और रख लेते हैं।''[5]

इसके बाद भी लोगों की नजर से इस प्रकार का विज्ञापन बच नहीं पाया। कहते हैं कि प्यासा पानी को ढूंढ़ ही लेता है चाहे कितने भी गहराई पर क्यों न हो? ऐसा ही दलितों के साथ भी होता है। महाविद्यालय में महिमा, राजेश एवं विजय ने फिर से आवेदन किया और इन्टरव्यू में गये तो पता चला कि उस पर तो तिवारी मैडम पहले से ही काम कर रही हैं। इतना सुनते ही माहिमा ने चप्पल और राजेश एवं विजय ने पाण्डेय का कॉलर पकड़कर मड़ोड़ दिया। इसके बाद तीनों ने नौकरी पाने के लिए यू. जी.सी. तक दौड़ लगाई, कई जगह शिकायत करी। पुनः विज्ञापन निकला, इसके बाद माहिमा की नियुक्ति हिन्दी प्राध्यापक पद पर हुई। इससे स्पष्ट होता है कि दलितों को आज भी नौकरी पाने के लिए मेहनत के साथ–साथ अतिरिक्त अनावश्यक कानूनी रूप से लड़ना पड़ता है तब जाकर, लोग सरकारी सेवा में आ पाते हैं ।

डॉ0 अम्बेडकर के मिशन 'शिक्षित हो, संगठित हो और संघर्ष करो' के साथ–साथ इस उपन्यास पर बौद्ध धर्म के 'क्षण–क्षण परिवर्तनशील है' का भी प्रभाव देखने को मिलता है। आज दलित, स्त्री एवं आदिवासी विमर्श ने

पूरे भारतीय समाज, के सामने प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है कि जब तक मूल निवासी एवं मूल समाजसेवी लोगों को बराबरी का दर्जा नहीं दोगे तब तक समतामूलक समाज का सपना अधूरा ही रहेगा। अब हिन्दी साहित्य प्रगतिवाद से आगे निकलकर उत्तर आधुनिक इसलिए है कि वह उन विमर्शों पर चर्चा कर रहा है जो विश्व की सीमा में प्रवेश कर चुके हैं– ''जो देश उन पर बात नहीं करते, वे कूपमंडूक और दकियानूसी माने जायेंगे यह तय होता जा रहा है। देश के प्रगतिवादी प्रयोगवादी और जनवादी लोग दलित विमर्श और स्त्री विमर्श पर चर्चा करते हुए अपने देश को और अपने आपको महान सिद्ध कर रहे हैं। वे इस पर गर्व भी कर रहे हैं।[6]

यह सच है कि जब किसी व्यक्ति ने मजदूर या पीड़ित का जीवन जीकर ही नहीं देखा हो तो वह कैसे उसके दुःख दर्द को बयां कर सकता है। दलित एवं स्त्री विमर्श उन लोगों का विमर्श है जिन्होंने सदियों से मानसिक एवं शारीरिक उत्पीड़न सहा है। आज भी उस जातिगत एवं लिंग भेद को सह रहे हैं। कुछ लोग कहते हैं कि घोड़ा पर लिखने को घोड़ा नहीं बना सकता है लेकिन वह इतना तो समझ ही सकते हैं कि जब हमने घोड़े जैसी लाचारी और मूकपन जीया ही नहीं तो कैसे उसकी पीड़ा को आत्मा में अनुभव कर सकते हैं । आज स्वर्ण लोग वातानुकूलित एवं कोमल गद्दों पर बैठकर दलित एवं स्त्री विमर्श की बातें खूब करते हैं। सबसे मजे की बात यह है कि दलितों पर चर्चा दलित नदारद स्त्री पर चर्चा स्त्री नदारद एवं आदिवासियों पर चर्चा आदिवासी नदारद रहते हैं। चमनलाल बजाज जैसे सामन्ती सोच के लोग भी उपन्यास में इसी प्रकार महिला सशक्तीकरण की बात करते नजर आते हैं– ''हवेली के बड़े हाल में गद्दे बिछे हैं। गद्दों के साथ गोल तकिये लगे हैं। तकिए के सहारे गद्दों पर आराम से बैठे लोग अलग–अलग ग्रुप में बातें कर रहे हैं। तेज ए.सी. से कमरे में काफी ठंडक है। इस गोष्ठी में सभी पुरुष महिलाओं के जीवन की समस्याओं पर विचार करते हैं।''[7]

यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि ये सामन्ती सोच के लोग वहां कागजी एवं काल्पनिक घोड़ों के सहारे विकास की बात करते हैं। यही हाल पूरे देश का है। जहाँ मजदूर, दलित, पिछड़े एवं स्त्री विकास पर अरबों रूपये की योजना केवल कागजों पर चलती हैं और कागजों पर ही समाप्त हो जाती हैं। इतना ही नहीं मजदूर एवं किसानों की योजना में मजदूर एवं किसान दूर–दूर तक दिखायी नहीं देते हैं। जो स्वयं शिक्षित नहीं वे उच्च शिक्षा मंत्रालय चलाते हैं। यदि इन योजनाओं में कोई शामिल भी होता है तो या तो वह बहुत परिचित होगा या ऐसा काठ का उल्लू होगा, जो कुछ नहीं बोलेगा ।

देश में सम्पन्न लोगों द्वारा प्राइवेट स्कूल कम्पनी या एन.जी.ओ. खोले जाते हैं वे उनके माध्यम से सालों–साल में अरबपति बन जाते हैं। बाहर से समाज सेवा का ढोंग करते हैं अन्दर से देश–विदेश से करोड़ों रूपये दान में लेते हैं जिसका कोई ठीक लेखा–जोखा भी नहीं देते हैं । सबसे बुरी बात तो तब है जब कोई ईमानदार आदमी उसमें गलती से जुड़ जाता है वह सदैव लोगों को सारी समस्याओं से पहले सोच बदलने की बात करता है। चमन लाल महिला जागृति आन्दोलन के नाम पर खूब पैसा लूटते हैं। दूसरी ओर धीरज कुमार जो दलित पात्र है वह सदैव सोच बदलने की बात करता है। इसके बाद भी इसकी बात पर लोग ध्यान नहीं देते– ''भाई साहब, हम यहां महिला सबलीकरण बिल पर चर्चा कर रहे हैं। आप यहां परिवार नियोजन की बात क्यों करने लगे? वह तो बाद की बात है। जब महिलाएं सबल हो जायेंगी तब वे स्वयं तय करेंगी कि उन्हें शादी करनी है या नहीं। शादी कब और किसके साथ करनी है। बच्चे चाहिए या नहीं.....साथियो 'परिवार नियोजन' से पहले समाज की मानसिकता बदलना जरूरी है। पुत्र के मोह एवं महत्व के कारण महिलाओं को सताया जाता है।[8]

आजादी के पहले से लेकर आज भी छात्रों में जातिगत भेदभाव की भावना पायी जाती है महिमा दलित शिक्षिका है लेकिन दलित बच्चे भी संकोचवश उनसे उनकी जाति नहीं पूछना चाहते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हमने पूछ लिया तो कक्षा में अपमानित होना पड़ेगा। महिमा शिक्षिका होने के साथ–साथ सच्ची समाजसेविका भी है जो गाँव–गाँव, बस्ती–बस्ती जाकर लोगों को तर्कशील जीवन का महत्व समझाती है। इतना ही नहीं वह उन्हें प्राचीन तर्कहीन परम्पराओं के विषय में भी समझाती है। होली के त्योहार के विषय में भी समझाती है कि यह दलितों का त्योहार नहीं है इस पर लोग पूछते हैं कैसे? तब वह बताती है ।

''हिरण्य कश्यप की बहन होलिका है न, वह भक्त प्रहलाद को गोद में लेकर आग में बैठी थी।..... होलिका एक दलित स्त्री थी। वह बहुत ताकतवर एवं सर्वगुण सम्पन्न थी। सवर्ण लोग उसे मारना चाहते थे। तब उन्होंने षड़यन्त्र किया था। उसी के भाई की सहमति से उसे आग में जला दिया। इसलिए यह त्योहार गम का त्योहार है। हमें समझना चाहिए।''[9] महिमा विजयादशमी के विषय में भी लोगों को बताती है– ''बौद्ध धर्म के मतानुसार कलिंग युद्ध के बाद सम्राट अशोक ने क्वार माह की दसवीं के दिन यह प्रतिज्ञा की थी'' मैं अब तक साम्राज्य विस्तार के लिए युद्ध करता रहा, अब मैं युद्ध नहीं करूँगा। अब मैं विजया धर्मचक्र नहीं चलाऊँगा। इस तरह दशहरा का सही नाम विजयादशमी' है। इसी दिन डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।''[10]

समाज को तोड़ने वाली जातिवादी मानसिकता का विरोध आज नया नहीं है। कबीर के समय भी समाज में यह परम्परा रही थी। तभी तो कबीर ने समाज में लोगों से कहा कि व्यक्ति के गुणों के आधार पर उसका परिचय प्राप्त करना चाहिए न कि जाति के आधार पर। वे बार–बार यही कहते नजर आते हैं –

''जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिओ ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान।''

इसके बाद भी जिन लोगों की सोच संकीर्ण है उनका व्यवहार कुत्ते की पूंछ की तरह होता है। वे गुणवान लोगों की जाति पूछे बिना नहीं रहते हैं। रामधारी सिंह दिनकर ने अपने रश्मिरथी'' खण्डकाव्य में ऐसे नीच लोगों के विषय में लिखा है– ''सिर पर कनक छत्र, भीतर

काले के काले शरमाते हैं नहीं जगत में जाति पूछने वाले।''

धीरज कुमार जब महाराष्ट्र के कमला नेहरू कॉलेज में नौकरी करता है। वहां के नीच लोग भी तब–तक चैन से नहीं बैठते जब तक उसकी जाति नहीं पता लगा लेते हैं।

समाज सेवा के नाम पर मजा मारने वाले लोग केवल दिखावा करते हैं। वे बात करते हैं स्त्री सुधार की लेकिन स्त्री उनके आन्दोलन से गायब रहती है। यही काम चमनलाल करते हैं। धीरज कुमार ने जब चमनलाल की बहन ऊषा को बोलते हुए सुना तो उसे इस बात की खुशी हुई कि चलो उस ढोंगी समाज सुधारक की पोल उसकी बहन ने ही खोल दी। धीरज ऊषा से पूछता है– ''ऊषा जी आपके समाज सुधारक भाई चमनलाल बजाज स्वयं स्त्री स्वतंत्रता के समर्थक हैं फिर आपको ऐसे बन्धनों में क्यों रखा जाता है।''[11]

स्त्री हो या पुरूष यदि हिन्दू धर्म की करतूतें जान जाय तो वह अपने साथ–साथ पूरे समाज का मार्गदर्शन कर सकता है। धीरज ऊषा को वह सच्चाई बताता है जिसके कारण स्त्री को सदियों से गुलाम बनाया गया। वह उसे समझाता है कि हिन्दू धर्म में स्त्री का स्थान केवल दास की तरह है। वह केवल घर में रहे और मान–मर्यादा के नाम पर अपना अधिकार न जान सके। भारतीय समाज में जाति व्यवस्था, रूढ़ियों एवं दहेज के अभाव में प्रो0 संध्या बजाज जैसी लड़कियाँ अविवाहित रह जाती हैं। महिमा की योग्यता, निडरता एवं साहस को देखकर कॉलेज के ब्राह्मण उससे जलते हैं। उसका परिचय जाति से देते हैं। तभी महिमा भी तुरन्त जबाव देती है ''मैंडम मेरा परिचय सिर्फ जाति से नहीं मेरे व्यक्तित्व एवं कृतित्व से है। ''12 ये परम्परावादी लोग भूल जाते हैं कि योग्यता जाति एवं धर्म की दासी नहीं होती है।

लेखिका ने एक ऐसे समाज का सपना देखा है जिसमें जाति नाम की कोई पहचान नहीं। सभी लोग बराबर समझे जायें। इसी प्रकार एक बेहतर समाज का निर्माण हो सकता है। महिमा अपने पूरे जीवन संघर्ष में समस्त नारी समाज को जातिवाद के विरुद्ध खड़ा करने का प्रयास करती है। वह बहुत तर्क पूर्ण ढंग से दलित स्त्री के शोषण के विषय में कहती है– ''सदियों से हमें शिक्षा और धन से वंचित रखा गया। तब कैसे? हमारे लोग बड़े अधिकारी और सुखी सम्पन्न लोग बन पाते? जो कुछ लोग अपनी उन्नति कर सके हैं, इसके लिए उन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा है? क्या दामिनी चौधरी ये बातें नहीं जानती? उसकी घरेलू हिंसा की समस्या क्या केवल एक महिला की समस्या है? यह तो पूरे समाज की समस्या है। महिलाओं को अपनी जाति और धर्म का गर्व छोड़कर, जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था का विरोध करना चाहिए। जाति विहीन समाज में ही समता, सम्मान और मुक्ति की बात सम्भव हो सकती है।''[13]

इस उपन्यास पर डा0 भीमराव अम्बेडकर की वैचारिकी का प्रभाव भी दिखाई देता है। महिमा के द्वारा डॉ0 अम्बेडकर के विचारों का जिक्र करना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। महिमा अम्बेडकर के स्त्री युक्ति के विचारों को स्पष्ट करते हुए कहती है–''क्रान्ति सूर्य डा0 अम्बेडकर को नमन, जिन्होंने हमारे देश के लिखित संविधान में स्त्रियों को पुरूषों के समान अधिकार देकर उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में सक्षम बनाया है और 'हिन्दू कोड बिल' में अलग से अधिकार देकर स्त्रियों को शोषण –उत्पीड़न से मुक्त होने के अवसर और अधिकार दिये हैं।[14]

प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक जातिवाद का जहर व्याप्त है। उच्च शिक्षण संस्थाओं में आज भी दलितों के छात्रावास अलग ही होते हैं। सवर्ण छात्र आज भी दलित छात्रों की रैगिंग करते हैं जिससे या तो वे अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हें या आत्महत्या करने पर मजबूर होते हें। समाज में समान अधिकार प्राप्त करने की लड़ाई, दलितों को स्वयं लड़नी पड़ेगी। क्योंकि यह सच है कि बिना अपने मरे स्वर्ग किसी को नहीं मिलता है। समाज में भेदभाव को पालते पोसते स्वयं हैं लेकिन आरोप दलितों पर लगते हैं। धीरज के साथ ही यही घटना घटती है तभी तो धीरज गुस्से से कहता है –''जातिवादी तुम हो या हम? सभी जातियों में सबसे बड़े बनकर सबसे ऊँचे बनकर कौन रहना चाहते हैं, हम या तुम?''[15]

कहा जाता है कि हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और होते हैं अर्थात व्यक्ति को उसके वाहरी व्यवहार से नहीं आंका जा सकता है। विशेष रूप से सवर्णों को चमनलाल बजाज इसका उदाहरण है चमन लाल महिमा से केवल ऊपरी तौर पर प्यार करता है उसकी आत्मा से नहीं। वह उसे पत्नी तो बनाना चाहता है लेकिन ऐसी पत्नी जो उसकी दासी बनकर रहे। चमन लाल प्रेम विवाह में भी अपनी सारी शर्तें उसके सामने रखता है। वह महिमा से कहता है–''विवाह के बाद आपको प्राध्यापिका की नौकरी छोड़नी पड़ेगी। आप जानती हैं, मेरी पत्नी साधारण प्राध्यापिका की नौकरी करें, यह मेरे मान सम्मान के विरूद्ध है क्या आपको मेरी शर्त मंजूर है? महिमा ने चमन लाल जी की बात का उत्तर देने से पहले सोचा, यदि धन सम्पन्न चमनलाल जी का साथ मिलता है, तो मुझे नौकरी की क्या जरूरत है? चमन लाल जैसे समाज सुधारक और स्त्री सबलता के समर्थक व्यक्ति के साथ रहकर, मैं नारी और दलित समाज के लिए अधिक काम कर संकूगी। महिमा ने कहा–मुझे आपकी बात मंजूर है।[16]

दलितों ने सदैव समतामूलक समाज के निर्माण पर जोर दिया है। यह तभी सम्भव है जब सवर्णों एवं दलितों में रोटी बेटी का सम्बन्ध स्थापित हो सके। दलितों की सोच सदैव समाज के प्रति सकारात्मक ही रही है। महिमा सोचती है कि चमन लाल जैसे समझदार लड़कों से दलितों की लड़कियाँ शादी करेंगी तो सामाजिक समानता का रास्ता मजबूत होगा। सवर्णों के साथ रहने से दलितों का सम्मान बढ़ेगा। वह क्या जानती है कि यह वे आस्तीन के साँप हैं जो मौका मिलने पर अपने पालक को भी नहीं छोड़ते हैं ।

हिन्दू धर्म के अंधविश्वासों ने भी दलितों को ऐसा मानसिक गुलाम बनाया है कि वे आज तक उससे जकड़े

हैं। दलित समाज के पतन में धार्मिक अंधविश्वास ने अपनी अहम भूमिका निभाई है न जाने कितनी जिन्दगियाँ भूत–प्रेत एवं जादू–टोने के चक्कर में फंसकर या तो मौत के मुख में चली गयी या उम्र भर के लिए विकलांग हो गई। इससे व्यक्ति अतार्किक जीवन–जीने को मजबूर होता है। ये वे परम्पराएँ हैं जो बिना सोचे–समझे पीढ़ी–दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती हैं। महिमा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद इनका विरोध करती हैं साथ ही दलित समाज को इससे आजाद कराने का जी भर प्रत्यन्त करती हैं। वह दलितों की बस्ती में जाकर देखती हैं– ''यहाँ यह समस्या भी हैं, हर घर में अंधविश्वास हैं, भूत–प्रेत या चुड़ैल का भय उन्हें ओझा के चक्कर में डाल देता है, जिससे धन के साथ जान का नुकसान भी वे उठाते हैं। घर के कुल देवता और कुल देवी की पूजा में सुअर की बलि चढ़ाना और समाज को शराब और मांस की दावत देना वहाँ का चलन है।''[17]

प्रेम विवाह होने के बाद भी जातिगत भेदभाव लोगों का पीछा नहीं छोड़ता है। चमन लाल और महिमा का प्रेम विवाह होने के बाद महिमा को घर के बाहर रहना पड़ता है। पुरानी पीढ़ियों के लोग जातिगत भेदभाव सबसे अधिक करते हैं। नई पीढ़ी धीरे–धीरे इसको तोड़कर समाज का निर्माण करने में सक्रिय है। इसके बाद भी घर के लोग उसे बहुत मुश्किल से स्वीकार करते हैं। चमन लाल का बड़ा भाई तो दलितों के सम्मान को पैसे से खरीदने की कोशिश करता है। तभी तो वह कहता है उससे कहो वह तुमसे पीछा छुड़ाने का कितना पैसा लेगी।

लेकिन दलितों ने कभी अपने सम्मान को नीलाम नहीं किया। महिमा इसका जीता–जागता प्रमाण है। विवाह के बाद भी दलितों को जातिगत भावना का शिकार होना पड़ता है। कहा जाता है कि जो डर गया वो मर गया। महिमा बहुत साहसी एवं निडर है। वह मौत से नहीं डरती है। अपने फैसले पर अडिग है। तभी तो वह कहती है ''किसी को मौत के घाट उतार देना आसान नहीं होता है।''[18] इतना ही नहीं वह यहॉ तक कह देती है कि– ''कोई मेरा अपमान करके तो देखे, उसके बारह बजा दूँगी। मैं भी दलित आन्दोलन की शेरनी हूँ, एक–एक को चीरकर रख दूँगी।''[19]

सवर्णों की एक मानसिक बीमारी सदियों से चली आ रही है, शुद्धीकरण। वे सजीव–निर्जीव सभी को अपनी मर्जी से कर्मकाण्डों के द्वारा शुद्ध कर लेते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि व्यक्ति कर्म से शुद्ध होता है, कर्मकाण्ड से नहीं। महिमा के शुद्धीकरण की बात आती है तो वह कहती है कि मैंने कोई पाप नहीं किया, तुमने किया है इसलिए तुम करो अपना शुद्धीकरण। इसके अंत में जब चमन लाल की बहन उषा की शादी धीरज जैसे दलित लड़के से होती है तब जाकर लोगों की सोच में फर्क दिखायी देता है।

निष्कर्ष

कह सकते हैं कि जब तक सवर्ण एवं दलित दोनों की सोच में परिवर्तन नहीं होगा तब तक समतामूलक समाज का सपना साकार नहीं होगा। इस उपन्यास में लेखिका ने अन्तर्जातीय विवाह के माध्यम से समतामूलक समाज की संकल्पना को साकार करने का प्रयास किया है। पश्चिमी संस्कृति के खुलेपन एवं आधुनिक शिक्षा के प्रचार–प्रसार द्वारा ही समाज में परिवर्तन की आहट सुनाई दे रही है। यहीं कारण है कि तुम्हें बदलना ही होगा। उपन्यास समतामूलक समाज का मूल दस्तावेज सिद्ध होता है।

अंत टिप्पणी

1. *शिवरानी पुहाल–दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक, अक्षरशिल्पी, 10295, गली नं01, वैस्ट गोरखपार्क, दिल्ली, 110032 पृ0 139*
2. *शिवरानी पुहाल–दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक, अक्षरशिल्पी, 10295, गली नं01, वैस्ट गोरखपार्क, दिल्ली, 110032 पृ0 148*
3. *डॉ0 सुशीला टॉकभौरे– तुम्हें बदलना ही होगा (उपन्यास) सामयिक प्रकाशन, 3320–21, जटवारा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली–110002 पृष्ठ–11*
4. *वही पृष्ठ–12*
5. *वही पृष्ठ–14*
6. *वही पृष्ठ–18*
7. *वही पृष्ठ–31*
8. *वही पृष्ठ–33*
9. *वही पृष्ठ–49*
10. *वही पृष्ठ–56*
11. *वही पृष्ठ–58*
12. *वही पृष्ठ–68*
13. *वही पृष्ठ–76*
14. *वही पृष्ठ–81*
15. *वही पृष्ठ–82*
16. *वही पृष्ठ–93*
17. *वही पृष्ठ–113–114*
18. *वही पृष्ठ–118*
19. *वही पृष्ठ–131–132*